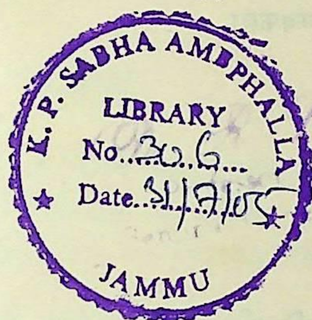


खुले कमरे बन्द द्वार

(कविता संग्रह)



रमेश मेहता

प्रकाशक :

सागर प्रकाशन

प्रकाशक :

श्री सुरेश शर्मा
४०२-अम्बफला,
जम्मू।

आवरण शिल्पी — श्री विजय गुप्ता

प्रथम संस्करण : मई १९७२
मुद्रक : नरेश आर्ट प्रैस, जम्मू।
मूल्य : तीन रुपए

पुस्तक प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता के लिए ललित कला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी, जम्मू-कश्मीर का धन्यवाद !

—र० मे०

भूमिका

यह देख कर प्रसन्नता हो रही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के दीप को जम्मू-कश्मीर जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में आभित रखने के लिए कुछ एक प्रतिभाएं सतत् प्रयत्नशील हैं। यह कार्य निस्संदेह कठिन भी है।

यहां न तो हिन्दी की इतनी पत्र-पत्रिकाएं, प्रकाशित होती हैं। और न ही अन्य कोई विशेष प्रोत्साहन है जो हिन्दी लेखकों को मिल सके। 'धर्म मार्ग' (मासिक), 'शीराजा' 'साद्गर पत्रिका' (त्रैमासिक) तथा 'सवेरा' (साप्ताहिक) इत्यादि का प्रकाशन प्रर्याप्त नहीं कहा जा सकता जबकि उर्दू तथा अंग्रेजी में छपने वाले दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों की कमी न हो। अतः यहां के हिन्दी लेखक तथा कवि अन्य प्रांतों के हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं से भी सहयोग की आशा करते हैं, जो उन्हों ने देना चाहिये। छटे दशक के उत्तरार्ध में जो तरुण लेखक तथा कवि सामने आए उनमें श्री ओम् प्रकाश गुप्त, श्री रमेश मेहता, कु० किरण शर्मा, इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

श्री रमेश मेहता से मेरा परिचय १९६७ के आस-पास हुआ। तब यह बी० ए० की तय्यारी के साथ-साथ कविता के क्षेत्र में भी प्रवेश पाने के लिए प्रयास कर रहे थे। तब से यह निरन्तर लिख रहे हैं और इन्होंने इसमें सफलता के अंकुर खिलाए हैं।

हिन्दी के साथ इनको अगाध अनुराग है। यहां की कई साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के साथ इनका सम्बन्ध है—यथा गांधी स्मारकनिधि, हिन्दी साहित्य मण्डल इत्यादि। इन दिनों यह एम० ए० हिन्दी के छात्र हैं। आशा की जा सकती है कि भविष्य में इनका हिन्दी प्रेम और भी अधिक निखार लाएगा।

हिन्दी साहित्य जगत को श्री रमेश मेहता की प्रथम भेंट "खुले कमरे, बन्द द्वार" देख कर प्रसन्नता होगी, ऐसा मेरा विचार है। यह प्रसन्नता तभी स्पष्ट हो सकती है जब इनको आपका पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हो।

युवा होने के नाते इनकी रचनाओं में 'तुम्हें भूल न पाता हूं,' 'दामिनी दमक दिखाती है,' तथा 'अनुभूति' में जहां रूमानियत की झलक मिलती है वहीं 'कागजी', 'प्रगति के चरण', 'जीवन का खण्डहर' जैसी रचनाओं में समाज के प्रति व्यंग्य दीखता है। 'एक रचना' 'एक जीवन अभावग्रस्त,' 'स्थिति बोध,' इत्यादि रचनाओं में घेराव एवं घुटन के भाव भी उभरते अनुभव किए जा सकते हैं।

रचनाओं की भाषा बहुत जगह प्रयोग की हो गई है। और हर प्रयोग का स्वागत करना चाहिये। 'सहारा' तथा 'बसन्त आगमन' जैसी रचनाएं इसका उदाहरण हैं।

सब देखते हुए 'खुले कमरे, बन्द द्वार' की रचनाओं में कवि, श्री रमेश मेहता, के चिन्तन एवं प्रस्तुतिकरण में मौलिकता की छाप का मूल्यांकन सहज हो जाता है।

मेरा विश्वास है, श्री रमेश मेहता भविष्य में इससे भी उत्तम कृतियां साहित्य जगत को देंगे।

४०२-अम्बफला
जम्मू (तवी)

सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम'

"गूंगी लड़की"

के

वाचाल क्षणों के नाम

—रमेश मेहता

अनुक्रमणिका

प्रतिकार दो

कल शाम किसी ने
रवि की
हत्या करके
उसे
कालिमा के आंचल में बांध
डुबो दिया है—
अथाह
सागर में।

परन्तु
उसका रक्त
घंटों
पानी की सतह पर
तैरता रहा
पुकारता रहा—
मुझे नव प्रभात दो
मुझे नई प्रात दो
मुझे
मेरे वध का
प्रतिकार दो।

एक जीवन अभावग्रस्त

जीवन का मन्दिर
अभावों की मूर्ति
लाख चढ़ाओ
अर्घ्य
अक्षत
नैवेद्य
होती नहीं
पूजा सामग्री की
पूर्ति ।
जीवन का मन्दिर
अभावों की मूर्ति !

एक विवादग्रस्त जीवन

मित्रों में बैठ
विवाद उठाया करता हूं
उन्हें लड़ाया करता हूं
अपना शत्रु बनाया करता हूं
परन्तु
विवादों से मित्रता गहरी करता जाता हूं।

कक्षा में बैठ
विवादों के पलीते को लगाता हूं आग
छात्र लड़ते हैं आपस में
अध्यापक झगड़ते हैं दोनों ओर
और
मैं अकेला एक किनारे खड़ा
देखा करता हूँ
विवादों का फलना-फूलना।

बस में चलते चलते
टिकट पर करता हूं विवाद
बच जाता हूं किराया देने से
क्योंकि
विवादों में जकड़ी होती है
कण्डक्टर की सरकार।

लिखा करता हूँ
विवादों में घिरी कविता
परन्तु फिर भी रुकता नहीं
करता रहता हूँ
नए-नए विवादों की रचना
क्योंकि
यदि अविवादी कविता नहीं बनती
तो
विवादाग्रस्त क्यों रोक दूं।

और इसी प्रकार
विवादास्पद इस दुनिया के
विवादास्पद लोगों का
विवादास्पद धारणाओं के बीच
जिये जा रहा हूँ मैं
एक विवादाग्रस्त जीवन
जिसके हैं
अनेक स्वरूप।

यह एक जिन्दगी

हम सिगरेट हैं,
लाल-नीली-पीली
डिब्बियों में लिपटे
हम सिगरेट हैं।

लोग एक-एक कर
डिब्बी में से निकाल
हमें सुलगाते हैं
तिल-तिल जलाते हैं
पर इतने पर भी
चैन न पाते हैं।

हमें फेंक देते हैं
सुलगने को,
सिसकने को
अथवा नोकदार जूतों से
मसलने को।

यदि उनसे पूछे कोई
यह सज़ा क्यों ?

उनके पास कोई उत्तर नहीं है
केवल इतना कहते हैं
यह हमें जला डालेंगे,
यह हमें मिटा डालेंगे
और बस !

परन्तु हम अभागे
यह भी पूछ न पाते हैं
क्योंकि
हम बेचारे सिगरेट हैं—
हम सिगरेट हैं ।

अभिशाप

चली गई
वह हंसी खुशी
वह जीवन का
शृंगार गया
ढलती शामों के साये में
सविता का अतुल भंडार गया।

इस बढ़ते हुए एकान्त में
स्वपनों का
सुख संसार गया
जो बुनता था मैं इक जाला
वह टूट गया,
उस पार गया
वह राम गया
वह कृष्ण गया
वह सीता मां सा प्यार गया
जो भी आया इस जीवन में
वह देकर कष्ट अपार गया
ढलका आंचल

उन्मन पलकें
उस स्वर्णिम मुख का
मान गया
जो पल-पल
बढ़ता जाता था
जीवन का
मधु-व्यवहार गया

मैं ने कब
यह कुछ मांगा था,
जो आया
वह अवतार गया;
मेरे जीवन पर
जो छाया
यह किसका है
अभिशाप नया !

स्थिति-बोध

वासनापूर्ण
चेहरों पर
नैतिकता के
मुखौटे लगाए
जिए जा रहे हैं
हम
एक संघर्षमय जीवन
अनेक
स्वरूपों में।

टूटा हुआ मकान

एक राह
वीरान, सुनसान
जैसे
उजड़ा श्मशान
और वहीं खड़ा
अकेला एक
टूटा हुआ मकान,

टूटा हुआ मकान
जिसके सब दरवाजे
सब खिड़कियां
झड़ चुकी हैं
शृंगार मिट चुका है
परन्तु फिर भी
वर्षा-जल से भीगी
छत को उठाये
यह चार दीवारें
आज भी एक मकान
कहलाने का दावा कर रही हैं

दावा भी किसका ?
नंगी दीवारों का
जिन पर
न कोई पलस्तर है
न सफेदी, न स्याही
न लिपाई, न पोताई
और छत ?
बस नाम की ही छत !

फिर भी एक प्रवंचना है
एक अनजाना छल है
जो उसे अपना
अस्तित्व बनाए रखने पर
बाध्य किए हुए है
और उसी विधा में जकड़ा
सम्पूर्ण विनाश की
घड़ियां गिनता
खड़ा है
एक
वीरान, सुनसान
राह पर
एक अकेला
उदास
टूटा हुआ मकान।

विडम्बना

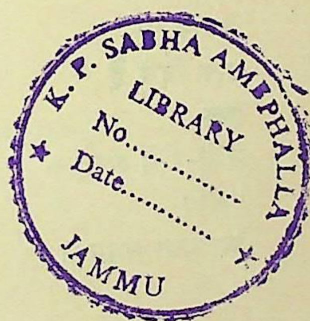
दिन भर की
थकी हारी
सो गई है ये सड़क–
अब रात हो गई है।

सड़क के सोते ही
कुछ भूत ख्यालों के
झनझनाते,
गुनगुनाते,
दनदनाते,
जगमगाते,
आए और चले गए
क्योंकि
उन्हें भी
अब नींद आ रही है।

फिर भी कुछ अतृप्त
आत्माएं
बेचैनी से भरी
इधर-उधर डोलती

फिर रहीं
कहीं कुछ ढूंढती सी
न जाने इनका
कब,
कहां,
क्या,
खो गया है ?

और यह
चली जा रही हैं
इधर से उधर, उधर से इधर
गुमसुम,
चुपचाप,
सिर झुकाये
न जाने
अब इन्हें भी
किसकी
याद आ रही है।



वसन्त आगमन

धूप के
'टाइपराइटर' ने,
फूलों के
'रिबन' से,
दिन के
कागज़ पर,
टांक दिये हैं
कुछ
नीले-पीले शब्द –
"लो !
आ गया मधुमास !"

सहारा

रवि ने
पांचवीं सीढ़ी पर पांव रखे हैं
अभी उसे आवश्यकता है
मेरी सहायता की
क्योंकि वह याचक बना
घिसट रहा है
मेरे पीछे-पीछे
मेरी ही छाया बन कर।

मेरी बाहों का सहारा ले
टिकाए हैं पग उसने,
बारहवीं सीढ़ी पर
और पहुँच सातवें आकाश
भूल गया है मुझे
अब उसे मेरे सहारे की आवश्यकता नहीं
क्योंकि
बिछुड़ गई है
अब मुझ से मेरी छाया।

परन्तु, वहां उसे कोई न मिला
सहारा देने को
और उसे गिरना पड़ा
एक बार फिर मेरी गोद में
क्योंकि मेरी छाया पंगु सी
मेरे पीछे
घिसट रही है
होकर कुछ और लम्बी !

जीवन का खण्डहर

मेरा जीवन
इक वीरान खण्डहर
की भांति है ।
यह खण्डहर,
जो कभी
जीवन की हलचल
अनुभव करता था
जो कभी मुक्तहास से
गूंजा करता था ।

यह खण्डहर
जिसने
विभिन्न शासकों के शासन का
पालन किया है
जो काले-गोरे
दोनों की राज्य-लिप्सा का
नग्न-नृत्य देख चुका है
इसकी भी कभी—
ऊंची उड़ान थी—
आकांक्षाएं थीं
और कभी यह भी
बातें करता था
आकाश के साथ ।

परन्तु आज—
आज यह खण्डहर है
काल-चक्र के खामोश द्रष्टा सा
चुप खड़ा
सब की सुनता है
सब कुछ देखता है
पर फिर भी
एक
अव्यक्त मौन से भरा
यह खण्डहर
सहे जा रहा है
आंधी,
तूफान,
और भूंचाल।
और जी रहा है
एक बरबाद
जीवन।

कागज़ी

बादाम कागज़ी हैं
अखरोट कागज़ी हैं
मीठे तो मीठे
खट्टे
नींबू भी कागज़ी हैं
शायद
इसीलिए यह
इन्सान
कागज़ी हैं।

कागज़ की दुनिया
दौड़े
कागज़ के
पीछे-पीछे
यह किताब कागज़ी है
यह लिबास कागज़ी है
चलती
हवा में उड़ते
पत्ते भी
कागज़ी हैं।

यह जिस्म कागज़ी हैं
यह रूह कागज़ी हैं।

लड़ने से मैं हूँ डरता
पहलवान कागज़ी हैं
शैतान से क्या डरना ?
शैतान
कागज़ी हैं।

मन्दिर में
जाना छोड़ा
भगवान कागज़ी हैं।
अरे,
नोटों का क्या
करोगे
यह नोट
कागज़ी हैं।

आधुनिक चेहरा

दीखता
जो चेहरा
वही
उदास है
कच्ची छत पर
पड़ रही
ज्यों
ज़ोर की
बरसात है!

दामिनी दमक दिखाती है

पत्तों से पत्ते
लड़ें नभ में
जब आंधी
रंग दिखाती है,
सावन से भादों
गले मिलें
जब
दामिनी दमक
दिखाती है।

घुंघरू से मिल
घुंघरू बोलें
जब चपला
कोई
इठलाती है,
पांवों में बिछुआ
रास रचें
जब
प्रीत कोई
दिखलाती है।

गीतों से साज का
मेल सजे
जब
रागिनी कोई गाती है,
जब
दूर कहीं
शहनाई बजे
तब प्रिय की
याद
सताती है।

सुन्दर स्वप्नों के
मध्य में ही
जब
प्रीत कोई
मिट जाती है
उस पल यह
वसुधा रोती है
औ'
प्रकृति
आंसू बहाती है।

रोती रहती
हर पल कलिका
और
फूल सदा
मुस्काते हैं
यह वह क्षण हैं

जो जीवन में
बस
कभी-कभार ही
आते हैं।

जब आते हैं
तो सुख लेकर,
जब जाते हैं
तो दुख देकर,
यह माया है
या छलना है
मुझको यह
समझ न आती है।

कलियां
खिल कर जब
फूल बनें
समझो कि
मधु-ऋतु
आती है
जीवन की हर
बीती धड़कन
इतिहास
नया लिख जाती है।

प्रश्न और प्रश्न

जो मिलता
पूछता—
"आपका शुभ नाम
कौन ठौर,
करते क्या काम,
कौन नगर,
कौन ग्राम,
कौन प्रदेश,
कौन प्रान्त,
कौन धर्म,
जात-पाँत ?"
और ढेर से प्रश्न।
और मैं
इन प्रश्नों की झड़ी में घिरा
मूक-भाव से सोचा करता—
क्या हैं इन प्रश्नों के उत्तर,
अर्थ और लाभ
क्योंकि
मैं अपने को
नागरिक समझे होता हूं
स्वतन्त्र भारत का।

लैम्प पोस्ट

हम हैं
'लैम्प पोस्ट'
तंग गलियों
चौड़ी सड़कों के
'पीले अंधकार' में
विचरने वालों को लगें
जैसे
'घोस्ट'
हम हैं लैम्प पोस्ट ।

गर्मी में जलते
शीत में ठिठुरते
राह दिखाते
खड़े हैं
अपने स्थान पर
अटल
अचल
नियति झेलते
हम
लैम्प पोस्ट।
हम हैं लैम्प-पोस्ट !

अनुभूति

सांसें जब
महक उठीं
भावों के लगे
अम्बार
और तभी
छेड़ गई
फाल्गुनी बयार.
गा उठीं
सभी दिशाएं—
"प्यार
प्यार
प्यार।"

तुम्हें भूल न पाता हूं

कल-कल करते
झरने की धार के नीचे
मैं
जब भी कभी नहाता हूं
तो
अपने ऊपर पड़ती जल-धार से
तुम्हारे पुलक स्पर्श का
आनन्द पाता हूं।

जब भी कभी
आकाश की ओर देखता हूं
तो
श्यामल मेघों में उड़ती
तुम्हारी अलकों की
सुगन्ध पाता हूं
और जब कभी
पहुंच जाता हूँ
पर्वतों की माला में
तो गगनचुंबी बर्फीली चोटियों में
देखता हूँ
तुम्हारे श्वेत उरोजों की चमक।

और दूर कहीं
घाटी के भीतर
लहराती
तुम्हारी बाहें
नदी की धार में
समाई सी लगती हैं।

देवदार और चीड़ों में
दृष्टिगत होती हैं
तुम्हारी
मांसल जंघाएं।
और पक्षियों के कलरव में
सुनाई देती है
वाणी मधुर, तुम्हारी।

देख चांद को
तेरे सुन्दर मुखड़े की
मन्द-मुस्कान की
याद आती है
इसीलिए
कहीं रहूँ
चला जाऊं कहीं भी
तुम्हें भूल न पाता हूँ
प्रकृति के इस विशाल प्रांगण में
तुम्हें हर जगह पाता हूं।

दौड़

दौड़, दौड़
दौड़।
पांच, दस
पंद्रह सौ की
दौड़।
प्रातः, सायं
दिवा-निशा
है
दौड़-दौड़
आठ-दस
एक-चार
जितने भी बजें
रहती है दौड़
जब देखो तब दौड़ ही दौड़—
कब नहीं है दौड़?
जीवन मृत्यु
बढ़ना, हटना
और तो और
बन गयी है
छलना
दौड़
कब नहीं है दौड़?

आते-जाते
खाते-पीते
सोते-जागते
स्वप्न देखते
लगी हुई है पीछे
केवल एक
भयानक दौड़—
कहां नहीं है दौड़ ?
मिल नहीं पाते
ठहर नहीं पाते
क्योंकि
जन्म से ही
लगी हमारे पीछे
एक दौड़।
आह !
यह एक अनजानी दौड़—
कहां नहीं है
दौड़ ?
किसने बनाई
किसने सजाई
ज्यों-ज्यों बढ़ती
जीवन डोर
त्यों-त्यों
घटती-बढ़ती
रहती है
यह पापिन
दौड़
न जाने है कहां
अंत

इस निष्ठुर
अभिमानिन का
क्योंकि
आधिपत्य जमाती ही चली जाती है
हमारे जीवन पर
यह —
दौड़।
कब
कहां
नहीं है
दौड़ ?

एक रचना

बनाए हैं
लोगों ने
नए-नए मकान
जिनमें नहीं हैं
खिड़कियां
और वातायन-
सब बन्द पड़े हैं।

और मकान की छत
तथा दीवारों पर
गहराता जाता है—
अभी से—
दरारों का जाल।

परिचय

कल
मैं आ रहा था
वह जा रहा था,
दोनों की आँखें मिलीं
और मुझे ऐसा लगा
जैसे
हमारा परिचय
वर्षों पुराना है
परन्तु
याद न आया
मैंने उसको
कब, कहां
देखा था।

इतने में
मेरी आंखों में
तैरते
परिचय के भाव
पढ़ कर शायद;
किया उसने अभिवादन

और
मैं अनिश्चय में फंसा
हड़बड़ा गया
फिर भी किया
प्रत्याभिवादन,
फिर दोनों
'हल्लो' कह
बढ़ चले
अपनी-अपनी राह ।

°

आगे जाकर
सोचा मैंने—
"वह कौन था ?"
और फिर
उसे चीन्हने के अन्तिम प्रयास में
पीछे घूम कर देखा
तो उसे भी
घूर-घूर कर
अपनी ओर देखते पाया;
और मुझे ऐसा लगा
मानो
उसकी घूरती आंखें
मुझे चीन्हने का प्रयत्न करती
पूछ रही हों—
अब तो कह दो,
"कौन हो तुम ?"

खोज

दूर
आकाश की गहराईयों में जाकर
मैं
'कुछ'
ढूंढना चाहता हूं,
'कुछ'
पाना चाहता हूं।

क्या है
वह "कुछ" ?
शायद
मानवता !

प्रगति के चरण

यह नाचते हुए
ज़िन्दा भूत
और
बढ़ती हुई
जंगली झाड़ियां
मरघट को सजाने में
प्रयत्नशील।

बढ़ती बस्ती,
घटता जंगल
शहरों को सजाने में
लगी हुई यह भीड़।

सिकुड़ते-सिमटते हुए—
कुछ मिटते हुए—
यह गाँव
पर्वतों की चोटियों से हट कर
उतर आए हैं
तलहटी में
छोड़ कर अपने नीड़।

घटते खेत
बढ़ते घर—
मैदानों में—
पता दे रहे हैं
किसी के
बढ़ते चरणों का।

उधार का जीवन

पूछा किसी ने
एक दिन
"कहो
तुम्हारा क्या है
तुम्हारे अपने पास ?"

कुछ ज़रा सोचा
मैंने
और कहा —
'कुछ भी नहीं,
जो है
वह सब उधार !"

स्वप्न और यथार्थ

देखतीं
आकाश आंखें
अनूठे स्वप्न
सजा रहीं,
शशी को
हर पल
ढूंढतीं
भूलोक किन्तु
भुला रहीं।
चूल्हे पर
खाना तो चढ़ातीं
आग किन्तु बुझा रहीं,
निर्माण नव ही
चाहतीं
इतिहास
लेकिन भुला रहीं।
चित्र नये ही
बनाती जातीं,
पुराने
किन्तु मिटा रहीं;
जो कभी थे
प्रण लिए
उनको हैं अब
क्यों भुला रहीं ?

विवशता

जीवन की
सुनसान डगर पर
खाते जब कोई
ठोकर,
टक्कर।

होता नहीं कुछ
बनता नहीं कुछ
रह जाते
बस,
खेद व्यक्त कर !

जुलूस

उभरते हुए कोलाहल में
एक आवाज़ उभरती है—
'इन्कलाब ज़िन्दाबाद'
परन्तु
दूसरे ही क्षण
वह आवाज़
बैठ जाती है
अथवा
दबा दी जाती है—
लाठी—चार्ज
अश्रु-गैस
या
गोली द्वारा,
जो
जनता द्वारा
बनाई गई
जनता की अपनी ही सरकार द्वारा
छोड़ी जाती है।

बढ़ती हुई भीड़ में—
जन-सागर की
किसी भारी लहर की
गति में
अवरोध
उत्पन्न कर दिया
जाता है—
इस जल-सागर
द्वारा लाए गये
अपने ही बालू-कणों द्वारा
क्योंकि वह लहर
एक
जुलूस बन
चुकी होती है।
और यह सब शायद
जनता के दुखों को
हरने के लिए
अथवा
बेचैनी मिटाने—
बढ़ाने—
के लिए ही
होता है।

श्रेय के अधिकारी

कामगारों ने
नेताओं के आवाहन पर
कर दी है हड़ताल।

भूख सहेंगे
मरेंगे प्यासे से
गोलियों की बौछार
और कटेंगे
उनके नाम
'पे—रोलों' से।

उधर
रात के अंधेरे में
विरोधियों से गल-बहियां डाले
नेता पीते होंगे शराब
करते हुए 'टोस्ट'
हड़ताल की
असफलता के नाम

परन्तु फिर भी
यदि
हड़ताल सफल हो गई
तो यह
दिन के उजाले में
आयेंगे सामने
डाले गले में
हार
कर जोड़े
करवाते जय-जयकार

और
उन कामगारों की
तपस्या का
सारा श्रेय
यह अनाधिकारी
समेट ले जायेंगे
बिना
किसी हिचक
बिना विचार।

तेरा नाम

कालचक्र के
क्रूर हाथों से
छूटकर
तड़पती.
छटपटाती
घिर आई है
उतर आई है
उदास
पीली-पीली
एक और
शाम ।

घटते ही जा रहे हैं
न जाने
क्यों
सारे आयाम
कानों को
सुनाई देता है
क्योंकर
फिर कोई
अनचाहा
पैग़ाम

दिल की
अतल
गहराईयों को
चीर कर
उठ आई है
एक दबी-दबी सी
आवाज़
और न जाने
क्यों
बार-बार
आ रहा है
होठों पर
तेरा
भूला-बिसरा
नाम।

प्रयाण

यात्री ने अभी
जीवन डगर पर
पग
धरे ही थे
कि
समाज ने
अकड़ते-फड़कते
उसके मार्ग को
'कामों'
एवं
'फुल-स्टापों'
से
पूर दिया।

यात्री रुका
कुछ क्षण ठिठका
और फिर
इन सब से बिना डरे
'कामों' व 'फुल-स्टापों'
पर
'इनवर्टेड-कामों'
की बर्फ गिरा
उस बर्फ पर
फिसलता चला गया
अपनी गति,
अपनी राह।

हम गंदे हैं

हम गंदे हैं
क्योंकि
हमारे पास
नहाने के लिए
साबुन,
पानी भी नहीं है।

सर पर लगाना तो दूर
खाना बनाने को भी
हमारे पास तेल नहीं है
शायद इसीलिए
हम गंदे हैं।

परन्तु
हमें गंदा-नंगा
कहने वाले
हमें
स्वच्छ नहीं बनाएंगे
कपड़े नहीं पहनाएंगे
कुछ करेंगे
तो केवल
प्रस्ताव पास।

स्वतन्त्रता

यह आगे दौड़ती हुई गाड़ी
और
पीछे दौड़ती हुई सड़क
दुल्हन को चुरा कर
बाबुल के देश से
कहीं दूर भगाए लिए जा रही हैं
न जाने कौन इसे
किस ओर ले जाने में
सफल हो जाय ।

आह्वान

आओ मन मन्दिर में
बस जाओ
नयन-मदिरा के
घूंट पिलाओ
छलकाओ
मृदु होठों के प्याले
श्यामल अलकों से
घेर घन लाओ
थिरक उठे
मन
मतवाला फिर
झूम उठे
फिर
दिल की धड़कन
गात-गात
फिर
गीत सुनाएं
तेरी ही
आराधना गाएं
और बसा लें
तुमको उर में
निकल यहां से पाओ न
तुम
जीवन साथी
इस जीवन में।

चिन्ता

चिन्ताओं में घिरा
मैं अपने को
दुविधाग्रस्त पाता हूं।

मेरा जीवन
चिन्तारूपी पक्षियों का
बन गया है नीड़
उन की दिन रात की चूं-चूं
भंग किए देती है—
मेरी शान्ति।

इसीलिए
जीवन अब
हो गया है रिक्त
और
गला जा रहा हूं मैं
इस चिन्ता-रूपी लावे में
आग के ऊपर रखे हुये पानी की भांति
घूंद-घूंद कर
सूखते-सूखते
समाप्त हो जाने को।

संध्या उदास-उदास है

रंगीनियों में दिन के,
यूं शाम की उदासी,
गहर-गहर कर
बदरा बरसे,
धरती फिर
प्यासी की प्यासी।

जीवन

एक सितारा
व्योम में उभरा
क्षण भर चमका,
डूब गया ।
हाय रे !
सम्बल टूट गया,
भाग्य किसी का
रूठ गया ।

अपने मसीहा के नाम

ओ मेरे मसीहा,
मैंने जब-जब तुम्हें पुकारा,
तुम
दौड़े-दौड़े आए
और मुझे
बार-बार
यम-दाढ़ों से
खींच लाए
इसीलिए
मैं
आज भी
जीवित हूं।
और
प्रयत्नशील हूँ—
अपनी प्रकृति से विवश—
बार-बार तुम्हें
मृत्यु की भट्टी में
झोंकने के लिए।

फिर भी,
ओ मेरे मसीहा!
इसमें मेरा दोष नहीं है

क्योंकि
जीवित होने पर भी—
युग के प्रभाव से—
मेरी आत्मा
मृत्यु-पथ गामी रही है
जिसे उस राह पर जाने से
तुम भी
रोक नहीं पाए।
परिणाम-स्वरूप तुम ने
सदा मेरा उपकार किया,
और मैंने
तुम्हारा अपकार।

और फिर—
इसके लिए
चाहते हुए भी
मैं तुमसे
न तो कभी
क्षमा मांग सका,
न मांग रहा हूं
और न कभी
मांग ही सकूंगा।

हां!
कुछ करूंगा—
तो केवल
तुम्हारे उपकारों के लिए
तुम्हारा
धन्यवाद!

खुले कमरे बन्द द्वार

अपने हाथों से सजाकर
अपनी चिताएं
बेच दी थीं
राख के व्यापारियों के हाथ
बुझे हुए अंगारों के साथ
हम भी खुश हो लिए थे
इसी मौज में पूरा जी लिए थे
कि मरना हमारा भी
काम आ गया है।

× × ×

दूर-दूर तक बिखेर दिए जाते हैं
हमारी राख के कण
कि किया जा सके हमको रुसवा
लिखा जा सके हमारे कलंकों का हिसाब
फिर जिन्दा किया जा सके
हमारा मरा हुआ इतिहास।

× × ×

दोस्त जता रहे हैं कितने ऐहसान
ज़िन्दगी से
मरने के बाद ही होने लगी है पहचान

धूल की आंखों से देखा किए हैं
उलझा हुआ समाज
अचीन्ही आवाज़ें सुनने लगे हैं
मरे हुए कान—आज ।
राख के कण से टूटने लगे हैं
मकड़ी के जाले के तार
और लगे हैं करने अर्थ-ग्रहण
खुले-खुले कमरों के
बन्द-बन्द द्वार ।

